संस्मरण

गोल-गोल रानी, कितना-कितना पानी

दिलीप चिंचालकर

ये उन दिनों की बात है जब ज़्यादातर लोग साइकिलों पर आते-जाते थे, टोस पाँच नए पैसों का एक मिलता था और रेडियो सीलोन पर वह गाना बजता था - हम पंछी एक डाल के। तब मैं बच्चा था। वैसा ही जैसे इस फिल्म के बच्चे थे। तब शहर की पाठशालाओं में अँग्रेज़ी पाँचवीं जमात से पढ़ाई जाती थी। शुरुआती शब्द वही हुआ करते थे - कॅट, रॅट, बॅट वगैरह। बच्चे इन्हें पढ़ाई से ज़्यादा गीत की तरह बड़बड़ाते और पढ़ाई मज़े से चलती थी।

एक दिन अचानक, पता नहीं कैसे, मैं 'पॉल्यूशन' नाम के शब्द से भिड़ गया। इसमें आश्चर्य इसलिए क्योंकि वह बड़ा साफ-सुथरा ज़माना था और ऐसी कोई बात दूर तक किसी के ख्याल में नहीं थी। मेरे पिता चित्रकार थे। हमारे घर में चित्रकला, संगीत और नाटक का वातावरण था। सो इसके मायने जानने से पहले मेरे दिमाग में इसका एक चित्र उभरा - चीनी की एक सफेद तश्तरी में भाप दिए हुए हरे मटर। उस पर पीले मक्खन की एक डली जो धीरे-धीरे पिघल रही है। चित्र और शब्द का नाता शायद उन दिनों बाज़ार में मिल रहे 'पोलसन' नाम के मक्खन के कारण जुड़ा।

पिताजी ने इस चित्र पर 'हूँ' कहा और मुझे इस विषय पर और चित्र बनाने (या सोचने) के लिए कहा। मेरा अगला चित्र था 'एनवायर्नमेंट'। ज़माने को देखते हुए अँग्रेज़ी का यह शब्द भी दुर्लभ ही था। इस बार चित्र में चीनी के बड़े सफेद डोंगे में नर्म हरे चने थे। इनमें घी और जीरे का छौंक था, काली मिर्च और नमक था। बड़े होने के बाद मेरे ध्यान में आया कि बचपन में सोचे मेरे चित्रों में रंगों से ज़्यादा ज़ोर महक और ज़ायके पर हुआ करता था।

इस चित्र को सुनकर पिताजी ने कुछ सुझाव दिए। उन्होंने उसमें कटी हुई सफेद प्याज़, हरी मिर्च और लाल टमाटर के टुकड़े डलवाए। हल्दी के पानी में उबाले हुए फूल गोभी के टुकड़े डलवाए और बारीक कटी हुई हरी धनिया के पत्ते भी। अब यह एक ऐसा सलाद था जो किसी सुन्दर जंगल का हिस्सा दिखाई दे रहा था। ध्यान रहे कि उस समय चित्रकला में 'इंस्टॉलेशन' नाम सुना

यह एक ऐसा सलाद था जो किसी सुन्दर जंगल का हिस्सा दिखाई दे रहा था।

भी नहीं गया था। माँ ने जिस दिन इस चित्र को रसोईघर में असली रूप दिया उस दिन खाने पर राहुल काका को बुलाया गया। वे एक अखबार के सम्पादक थे और मुझे अपना दोस्त मानते थे। मैंने उन्हें अपने चित्र की कल्पना समझाई। 'एनवायर्नमेंट' को चाव से खाने के बाद उन्होंने कहा कि इस व्यंजन को हिन्दी में भी बनाकर देखना चाहिए।

मेरे लिए यह एक दिलचस्प उकसावा था। पहले तो मैंने 'एनवायर्नमेंट' का पर्यायवाची शब्द खोजा। पर्यावरण शब्द मिलते ही चित्र सामने आ गया। या यों कहिए, चित्र पहले से ही तैयार था, अब उसे नाम मिल गया। यह था खास मराठी शैली के दाल-भात का चित्र। छोटी कड़ाहीनुमा कटोरी में भात भरकर उसे स्तूप के आकार में पत्तल पर उलट दिया। इस पर बिना बघार वाली सादी दाल डाली जिसमें केवल हल्दी, नमक और स्वाद के लिए गुड़ पड़ता है। ऊपर से शुद्ध घी और नींबू। इस चित्र का स्वाद बेशक मुँह में पानी लाने वाला था लेकिन राहुल काका की राय में 'एनवायर्नमेंट' रंगों के लिहाज़ से भी अर्थ के ज़्यादा निकट था।

इस सीरीज़ का मेरा अगला और शायद आखिरी चित्र 'प्रदूषण' था। दिमाग में यह प्रकट हुआ भी एक दुर्घटना के कारण। एक शनिवार को मैं कैनवास के नए सफेद जूते और नई सफेद जुराबें पहनकर क्रिकेट खेलने के लिए गया था। मैदान के रास्ते में एक गंदा नाला पड़ता था। उसे लाँघते समय किसी ने मुझे धक्का दे दिया और मैं गंदे काले पानी में उतर गया।

नए जूते-मोजे बर्बाद हो गए। सुबकते हुए मैं घर पहुँचा। माँ ने पुचकारते हुए मेरे आँसू पोंछे। पिताजी ने 'प्रदूषित' कहते हुए उस नाले रूपी नदी को धिक्कारा। मेरे सफेद जूते-मोजे अपनी चमकदार सफेदी दोबारा पा नहीं सके परन्तु 'प्रदूषण' का चित्र मेरे मन में बन ही गया - जीरे और कढ़ी पत्ते की छौंक वाला दही भात... मगर चावल में कीड़ों से बचाने के लिए डाली गई दवाई की गोली जैसे भूल से पककर मुँह में आ गई हो।

राहुल काका ने कहा कि इस व्यंजन को हिन्दी में भी बनाकर देखना चाहिए।

उस शाम पिताजी को लगा कि बालक के कल्पना चित्रण को मोड़ देने का समय आ गया है। रात को हम दोनों ने माँ की नीले रंग की नौ गज लम्बी महाराष्ट्रीयन साड़ी से एक नदी बनाई। यह बैठक के कमरे में रखे तख्त पर से शुरू होती थी। खेतनुमा भूरी चौकड़ी वाली दरी पर से होकर, बीच के कमरे, गलियारे और रसोईघर से निकलकर यह पिछले चौक में खत्म होती थी। उसके रास्ते में सन्दूकों वाली घाटी, परात में रखी मेथी की सब्ज़ी के जंगल थे और कुर्सी का पुल भी था।

हमारे घर में पलंग नहीं थे। माँ बाहर के कमरे में ज़मीन पर गद्दे डालकर बिस्तर लगा देती थी। उस वर्ष गर्मियों में माँ अकेली ही ननिहाल गई थी। उसकी नीली साड़ी वाली नदी हर रात बिछौने पर से होकर बहती रहती। मैं उसे याद करते हुए ठण्डी रेशमी साड़ी पर गाल रखकर सोता। बहुत बाद में जब पुस्तक में पढ़ा कि नदी को माँ कहा जाता है तो मुझे ज़रा भी अटपटा नहीं लगा। जैसी नदी माँ की रेशमी साड़ी में थी वैसी नदियाँ 'एनवायर्नमेंट' में जहाँ-तहाँ अटी पानी की साड़ियों में थीं।

***

हमारे भूगोल के शिक्षक ग्यान सिंग जी बड़े मज़ाकिया और किस्सेबाज़ थे। वे कहते थे कि जब प्रकृति जीव-जन्तु डिज़ाइन कर रही थी तब पानी की ज़रूरत आ पड़ी। तब उसने घनघोर बारिश करके

माँ की नीली साड़ी वाली नदी हर रात बिछौने पर से होकर बहती रहती। मैं उसे याद करते हुए ठण्डी रेशमी साड़ी पर गाल रखकर सोता।

धरती पर पानी गिराया। तालाब और झीलें भर लीं। कुछ पानी का बर्फ जमा कर पृथ्वी के दोनों सिरों पर रख दिया। बचा हुआ नदियों से बहाकर गाँव-गाँव बाँटा। रहा-सहा समुद्र में डाल दिया जहाँ से उसे हर वर्ष उलीचकर फिर से बँटवारा किया जा सके।

हा-हा-हा... सब लड़के हँसने लगे। लड़कियों ने मुँह पर हाथ रखकर अपनी हँसी छुपा ली मगर वह उनकी आँखों में चमकती रही।

पृथ्वी पर पानी का आना चमत्कार से कम नहीं था। ग्यान सिंग जी रहस्य की बात बता रहे थे। यहाँ से दूर-दूर तक, नौ अरब कि.मी. तक पानी नहीं है। हमारी हँसी गायब हो गई। क्योंकि, अव्वल तो नौ अरब कि.मी. कितना दूर होता है इसका हमें पता नहीं था। फिर वहाँ कौन-सी जगह पड़ती होगी इसका अन्दाज़ लगाना और कठिन था।

सूरज से दमकती इस दुनिया में सबसे दूर का ठिकाना है शनि ग्रह। वह सूरज से लगभग साढ़े चार अरब कि.मी. की दूरी पर है। जब वह सूरज के इधर होता है और जब वह सूरज के उधर होता है, यानी लगभग नौ अरब कि.मी. के घेरे में पानी पक्के तौर पर केवल पृथ्वी पर ही है। ज्ञान की एक चुटकी के साथ ग्यान सिंग जी ने शनि ग्रह पर से रहस्य का बादल हटाया।

वैसे आज से पचास वर्ष पहले पानी को लेकर कोई चिन्तित नहीं था। फिर हम बच्चों ने चौथी कक्षा में ही पढ़ रखा था कि पृथ्वी का सत्तर-बहत्तर प्रतिशत हिस्सा समुद्र से ढँका हुआ है। उल्टा हमें तो डर था कि किसी बारिश की बाढ़ में यह पानी घर में घुस आया तो क्या गज़ब हो जाएगा।

मास्टरजी ने आगे कहा - सच कहूँ तो पृथ्वी भर के पानी से उसका चुल्लू

भी नहीं भरेगा। यह बात तो सचमुच चौंकाने वाली थी। माना कि पृथ्वी पर समुद्र का क्षेत्रफल 14 करोड़ वर्ग कि.मी. है। मगर पृथ्वी के चालीस हज़ार हिस्से किए जाएँ तो समुद्र का केवल एक होगा। प्रशान्त महासागर में एक स्थान (मेरिआना ट्रेंच) पर उसकी गहराई ग्यारह कि.मी. अवश्य है फिर भी औसत गहराई मुश्किल से चार कि.मी. (सही आँकड़ा 3.86 कि.मी.) है।

ऐसा कहते हुए ग्यान सिंग जी ने अपनी कुर्सी मेज़ के ऊपर रख दी और वे कुर्सी के ऊपर खड़े हो गए। नीले रंग की खड़िया से उन्होंने दीवार के ऊपर एक बड़ा गोला बनाया - फर्श से छत तक का। वहीं पर खड़े-खड़े वे बोले कि फर्ज़ करो कि यह पृथ्वी है और मैं उसकी त्रिज्या (अर्धव्यास)। मेरी लम्बाई 6730 कि.मी. है। यदि मेरा असली कद 168 से.मी. हुआ तो मुझ पर समुद्र का पानी कितना होगा?

मैं गणित में बेहद कमज़ोर था परन्तु मैं निश्चिन्त था क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर निश्चित अनोखा था और उसे आज विद्यार्थी नहीं शिक्षक ही बताने वाले थे। कुछ पल की खुसर-पुसर के बाद मास्टरजी ने सही उत्तर बताया - शून्य दशमलव एक शून्य पाँच से.मी.। अर्थात् लगभग एक मि.मी.। यह उतना ही होगा जितना गहरा मेरे बदन पर आया पसीना है। पृथ्वी पर इतने पानी के एक सौ हिस्से किए जाएँ तो केवल तीन पीने लायक

फर्ज़ करो कि यह पृथ्वी है और मैं उसकी त्रिज्या।

हैं। उसमें से थोड़ा झील-तालाबों में, थोड़ा नदियों में और बर्फ में मिलेगा। बाकी खारा है।

मैं चकित था।

केवल इतने से पानी से पृथ्वी भर के 'एनवायर्नमेंट' का चित्र खिला था। मुझे अब मेरे चित्र में स्वाद, महक, रंग और अचम्भा भी अनुभव हो रहा था।

***

मैंने सबसे पहले जो नदी देखी वह थी उज्जैन की क्षिप्रा, जहाँ मेरा ननिहाल था। वह घर से बहुत पास थी। हम दिन में कई बार जाकर घाट पर नहाते थे। मैंने दूसरी नदी जो देखी वह थी गंगा। भादों के महीने की गंगा। एक बार देखी तो दोबारा देखने की हिम्मत ना हो इतनी डरावनी थी गंगाजी। उस दिन ग्यान सिंग जी की बातों पर मुझे सन्देह होने लगा था कि पानी बहुत कम है, पानी मूल्यवान है वगैरह।

बरसों बाद मैं नगर पालिका में पानी का बिल भरने लगा तो इसकी कीमत थोड़ी-थोड़ी समझ में आने लगी। नब्बे रुपयों में एक कोठी साफ पानी महीने भर रोज़। बस-रेलगाड़ी में प्यास लगे तो पानी के दाम होंगे पन्द्रह रुपए बोतल। हवाई जहाज़ में पानी पीना हो तो पैंतालिस रुपए बोतल। अन्तरिक्ष में पानी चाहिए तो उसकी एक बोतल के पौने दस लाख रुपए चुकाने होंगे। ये दाम छः वर्ष पहले के हैं। इतने वर्षों में पेट्रोल-डीज़ल के भाव बढ़ने के बाद अब पता नहीं क्या होंगे। अभी अखबार में छपा था कि रूसी वैज्ञानिक अन्तरिक्ष में सब्ज़ियाँ उगाएँगे। पता नहीं उन हरी सब्ज़ियों के भाव क्या खुलेंगे।

यह हुई बात पानी के रुपए-पैसों में महँगे होने की। मोल तब पता चलता है जब पानी दाम चुका कर भी मिले ही ना। समझो आज से पानी मिलना बन्द हो गया है। न नलों में, न कुँओं-बावड़ियों में। न नदियों में, न पहाड़ों की चोटियों पर जमी बर्फ में। तब हम क्या पीएँगे? बोतलबन्द ठण्डा कोला? लेकिन उससे कितने दिन प्यास बुझेगी? उसे पीने से दाँत खराब होना और शक्कर की बीमारी बढ़ना तय है।

दुनिया के सबसे सुनहरे दिनों में दूध की नदियों का बहना बताया जाता है। क्या हम पानी की बजाए दूध ही पीएँगे? मैं तो न पी सकूँगा। सुबह एक गिलास दूध पीने में ही मुझे ज़ोर आ जाता है। सारा दिन, रोज़-रोज़ कैसे पीऊँगा? छाँछ कैसी रहेगी? पेट के लिए छाँछ अच्छी मानी जाती है। मगर उठते-जागते छाँछ पीने से एक दिन पेट चलने लगेगा।

कोला-दूध-छाँछ पीने के लिए ठीक हैं। इनसे नहाना कैसा लगेगा? चिपचिपा? इनसे कपड़े कैसे धुलेंगे? इन्हें गमलों के पौधों में डाल सकेंगे? ग्यान सिंग जी ने नदी को जीवनरेखा बिलकुल ठीक बताया था। इसलिए तो गाँव और शहर नदी के किनारों पर बसते थे।

मेरे शहर में अब नदी नहीं है। जो थी वह नाले में बदल गई है। मेरे दोस्त के शहर में अब भी नदी है। वे सब उसी का पानी पीते हैं। वे अपनी गन्दगी भी उसी नदी में डालते हैं। जिन शहरों में नदियाँ होती हैं उनकी नगर पालिकाएँ ये दोनों काम बराबर करती हैं - नदी को साफ करना और नदी को खराब करना।

मैंने होशंगाबाद वाले मित्र के पिताजी से कहा कि वे लोग ऐसा न करें। मित्र के पिताजी ने पूछा कि फिर क्या करें।

मैं - "मुझे नहीं पता। लेकिन फ्लश वाले पाखाने पानी के मामले में सबसे ज़्यादा खर्चीले और सबसे कम कारगर हैं।"

मित्र के पिता - "अजीब सिरफिरा मित्र है तुम्हारा। सब लोग ऐसा ही करते हैं। हमारे पहले भी लोग ऐसा ही करते थे। जिस शहर में नदी हो उसमें क्या खर्चीला? खुद को पता नहीं और हमें बताने चले हो।"

जिन शहरों में नदियाँ होती हैं उनकी नगर पालिकाएँ ये दोनों काम बराबर करती हैं - नदी को साफ करना और नदी को खराब करना।

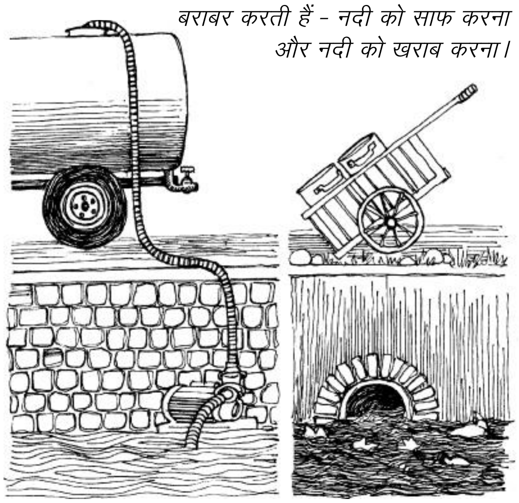

उन्हें उपदेश देने का मेरा कोई इरादा नहीं था। यह कहते समय मेरे मन में दूसरे एक मित्र का गाँव था। उसके शहर की नगर पालिका ऐसा नहीं करती है क्योंकि वहाँ नदी है ही नहीं। वर्षा भी कम ही होती है। जब इलाके का पानी चुक गया तो नगर पालिका ने तय किया कि वह नालियों में बहाया गया पानी फिर से साफ कर घरों में पहुँचाएगी। वह मित्र था जॉन हॉर्सपॉल और उसका गाँव था टुवूंबा, ऑस्ट्रेलिया में। फिर भारत हो या ऑस्ट्रेलिया, हर गाँव में गन्दगी बहाने के लिए नदी या तालाब नहीं होते हैं। होशंगाबाद या कानपुर वालों जैसी आसान तरकीब हर कोई नहीं लगा सकता। सूखे इलाकों में पानी नहीं होता। लद्दाख जैसी जगहों पर पानी हो तो भी जम जाता है। तब हर किसी को अपना तरीका खोजना पड़ता है।

ग्यान सिंग जी पढ़ाते-पढ़ाते कभी-कभी उदास

तो वह हमें टुवूंबा-सा कोई सबक सिखाएगी। सोच लो, बगीचे में रहना पसन्द है या कान पकड़कर बाहर कर दिया जाना?

थोड़े समय बाद होशंगाबाद वाले अंकल का गुस्सा ठण्डा हुआ तो वे बोले, “ऐसा नहीं कि हम नदी का सम्मान नहीं करते। हम नदी का उत्सव मनाते हैं। उसकी पूजा-आरती करते हैं। उसे चुनरी भी ओढ़ाते हैं।” मेरा-नदी का रोज़ का वास्ता नहीं था इसलिए मैं नदी की जगह माँ के बारे में सोचने लगा। यदि माँ की तबियत खराब हुई तो मैं क्या करूँगा?

क्या केक-मोमबत्ती के साथ उनका जन्मदिन मनाऊँगा? या पिताजी उन्हें नई साड़ी लाकर भेंट करेंगे? नहीं, उसे दवाई और आराम देने से तबियत जल्दी ठीक होगी। और आगे उनकी तबियत खराब ना हो इसलिए उनका काम आपस में बाँट लेंगे ताकि वे सुबह-शाम बगीचे में हवाखोरी कर सकें। आखिर माँ खुश रहती हैं तो घर के सब अच्छे रहते हैं।

लेख एवं चित्रांकनः दिलीप चिंचालकरः भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में मक्का के लायसीन अमीनो अम्ल पर शोध, एडिलेड विश्वविद्यालय में नाइट्रोजनेस किण्वक पर शोध से शुरुआत। कारखानों में मज़दूरी, भरतपुर पक्षी अभयारण्य में सालिम अली के साथ पक्षी अवलोकन, पर्यावरण सम्बन्धी पुस्तकों के रूपांकन, विज्ञापन शास्त्र के अध्यापन और पाव सदी अखबारी काम के बाद अब बच्चों के लिए लेखन और गोबर-नीम-केंचुए वाली खाद बनाने में विशेष दिलचस्पी।